Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 GISRRJ | Volume 7 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

दलित जीवन संघर्ष एवं आत्मकथाएँ

कुमार सत्यम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर मधेपुरा, बिहार।

Article Info

Article History
Accepted : 25 Jan 2024
Published : 30 Jan 2024

Publication Issue :
Volume 7, Issue 1
Jan-Feb-2024

Page Number : 58-60

सारांश- दलित शब्द से तात्पर्य है एक ऐसा वर्ग जो शोषित, पीड़ित, दबा–कुचला, हीनता से ग्रस्त, जिसे समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के बच्चे भी दलित वर्ग के बुजुर्गों को भी डाटने, फटकारने तथा गाली गलोज करने का पैतृक अधिकार लिये हो या यूँ कहे की जो समाज के हाशिये पर जीवन जीने को मजबूर समाज के उपेक्षित हो। समय के साथ साथ दलितों की स्थिति निम्न से निम्नतर होती चली गयी। इनके साथ भेद–भाव का स्वरूप का और विस्तार होनेलगा। इनके लिये चलने के अलग रास्ते थे। इनके लिये अलग टोले–मुहल्ले हुआ करते थे। पारंपरिक साहित्य जो मुख्य रूप से अब तक मन्दिरों और राज सभाओं में फला–फूला, वहाँ दलित समुदाय का निषेध ही रहा। साहित्य का जनतांत्रिकरण का आरंभ आधुनिक काल में हुआ, जब साहित्य के केंद्र में नायकत्व के स्वरूप में परिवर्तन आया। आम जनजीवन और साधारण व्यक्ति आधुनिक काल में साहित्य लेखन के केंद्र में आया।

बीज शब्द : दलित साहित्य, समाज, आत्मकथाएं, हिंदी साहित्य, आत्मसंघर्ष ।

देश के स्वाधीनता आंदोलन में भी दलित प्रश्नों को डॉ. अंबेडकर ने बड़ी गंभीरता से उठाया। आजादी के पश्चात देश में संविधान लागू होने के बाद सामाजिक न्याय की अवधारणा और मजबूत हुई और दलितों की अभिव्यक्ति विभिन्न मोर्चों पर होने लगी। साहित्य भी इसमे पीछे नहीं रहा, और दलितों ने अपने जीवन संघर्षों को बड़ी मुखरता से अपनी रचनाओं में व्यक्त करना शुरू किया। इन रचनाओं में आत्मकथाओं का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ये आत्मकथाएँ पारंपरिक आत्मकथा विधा से अलग होकर केवल दलित जीवन की त्रासदी ही व्यक्त नहीं करती बल्कि ये अपने भोगे हुए यथार्थ के माध्यम से दलित चेतना को जगाने का कार्य करती है। दलित चेतना को व्याख्यायित करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "दलित की व्यथा दुख पीड़ा का भावुक और अश्रुविगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहीन हो, चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है, जो दलितो कि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है वह है 'दलित चेतना' दलित मतलब मानवीय आधिकारों से वंचित सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो। उसकी चेतना यानि दलित चेतना। यही दलित चेतन, दलित साहित्य की अन्त: ऊर्जा में नदी के तेज बहाव की तरह समाविष्ट है, जो उसे पारंपरिक साहित्य से अलग करती है।" [1]

दलितों में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी के कारण दलित वर्ग समाज में हमेशा से निम्नस्तरीय रहे हैं। उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। उन्हें पढ़ने नहीं दिया जाता था। उससे सभी प्रकार के हीन कार्य करवाए जाते थे। आजादी के बाद भी दलित

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

छात्रों को कक्षा में बैठने नहीं दिया जाता था। दूर किनारे में अलग नीचे बैठकर या खड़े होकर पढ़ाई करते थे। कक्षा में उच्च वर्ग के छात्रों तथा शिक्षकों से कटु वचन सुनने को मिलता था। इधर हाल की एक घटना है:- दलित वर्ग के छात्रों द्वारा घरे से पानी पीने पर शिक्षकों ने मासूम बच्चा को पीट-पीट कर मार डाला। संविधान के निर्माता डॉ भीमराव अंबेडकर खुद दलित वर्ग से आते थे। उन्होंने भी अपनी पढ़ाई सामाजिक तत्वों से संघर्ष करके पूरा किया। बाबा साहब अंबेडकर ने कहा "शिक्षा वह श्रेणी का दूध है जो भी पिएगा वह दहारेगा"। दलित वर्ग को सभी सुविधाओं से भी वंचित रखा गया था। दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होता था। यहाँ तक कि वे लोग किसी उच्च वर्ग के कुएँ से पानी भी नहीं भर सकता था। इतनी छुआछूत, भेदभाव, जाति-पाति, ऊँच-नीच के बावजूद दलित वर्ग समाज के अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग हैं। दलित वर्ग के व्यक्ति समाज के तमाम छोटे-बड़े घरों के व्यक्ति के जन्म से लेकर मरण तक काम आते हैं। समाज में दलित वर्ग की स्थिति बदतर थी। दलित वर्ग की स्थिति बेहतर नहीं होने की एक और वजह समज में वर्ण व्यवस्था का होना था। इसके तहत दलित वर्ग को जीविकोपार्जन हेतु वही गंदगी वाला काम करने को मजबूर किया गया। जैसे गंदगी, मलमूत्र साफ करना, मरे हुए जानवरों को फेंकना, जानवरों के खाल से ढोलक, बेल्ट आदि बनाना, बच्चों के जन्म के बाद सभी अवांछित पदार्थ को फेंकना, साफ करना, शादी-विवाह एवं शोक के समय भी ढोल बाजे बजाना। लकड़ी, मिट्टी, चमड़ा, बाँस इत्यादि से रंग-बिरंगे वस्तुओं का निर्माण करना। गृह-प्रवेश, शादी-विवाह, धार्मिक कार्य और रोजमर्रा के जिंदगी के लिये उपयोगी वस्तुओं का भी निर्माण दलित वर्ग द्वारा ही किया जाता है। जैसे:- सुप, डगड़ा, सुपती, मौनी, पंखा इत्यादि। इतना हीं नहीं मृत्युपरांत मोक्ष प्राप्ति हेतु दलित वर्ग से मुखाग्नि लेते हैं तब जाकर दाह- संस्कार होता है। कहते हैं समय बड़ा बलवान होता है। जो व्यक्ति अपने जीवन काल में दलित वर्ग के छाया से दूर भागते थे, उसके द्वारा दी गई खाद्य सामग्री को छूता नहीं था, शुभ- अशुभ घड़ी में तथा दैनिक कार्यों हेतु दिए गए सामग्री को धोकर घर में रखता था। लेकिन मृत्यु के बाद भी दलित पर आश्रित होना पड़ता है। फिर भी जीते जी बेशर्मी की सारी हदें पार कर दलित वर्ग के साथ अभद्र व्यवहार करते हैं। सच में दलित जीवन संघर्ष से भरा पड़ा है। आज जो दलित वर्ग की स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार हुआ है उसमें मुख्य रूप से भारत के संविधान का योगदान है।

पूर्व में दलित वर्ग अपनी बातों को नहीं रख सकते थे। प्रताड़ित, शोषित होने के बावजूद कहीं शिकायत नहीं कर सकते थे। लेकिन अब हिंदी साहित्य के विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्ति की मुख्य विधा आत्मकथाओं के माध्यम से अपने सत्य और स्पष्ट बात जन-जन तक पहुंचा सकते हैं। सत्य इसलिए क्योंकि आत्मकथाओं में स्वयं लेखक द्वारा भोगा हुआ यथार्थ प्रस्तुत किया जाता है। दलित आत्मकथा लेखन से दलित वर्ग को जागरूक और इकट्ठा करते हैं जिससे वे हक अधिकार एवं समानता के लिए आवाज उठाते हैं। कई बार तो आवाज उठाने के बावजूद न्याय नहीं मिलता है। दलितों के आवाज को दबाने के लिए तथा मुख्य आरोपी को बचाने के लिए सारे चोर उचक्के, अपराधिक प्रवृत्ति के व्यक्ति, समाज के सभी सज्जन-दुर्जन, मानवाधिकार के हिमायती आदि सभी का स्वर एक होते हैं। आज भी दलितों पर होते अत्याचार को समाज अनदेखी करती है। इसका जीता जागता उदाहरण हाथरस की घटना है।

डॉक्टर बाबासाहेब अंबेडकर ने संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित हो के नारे के साथ उन्होंने दलितों को जागृत करने का कार्य किया। आजादी के बाद दलितों ने भी अपनी आवाज को मुखरता से अभिव्यक्त करना शुरू किया। पहले कविताओं में, कहानियों के माध्यम से अपने सामाजिक जीवन को सामने लाए, लेकिन दलित आत्मकथाओं में उनका प्रामाणिक भोगा हुआ यथार्थ है। जो उन्होंने स्वयं भोगा है, महसूस किया है। भोगे हुए यथार्थ में सत्या प्रामाणिकता के साथ व्यक्त होते हैं और इस यथार्थ को लाने के पीछे का मकसद है जागृत करना, सदियों से जो उन्हें दबाया गया है उस आक्रोश को व्यक्त करने के लिए आत्मकथा विधा से बेहतर कोई विधा नहीं हो सकती है। यह समाज के अन्य तब के के जो लोग हैं, उन्हें भी झकझोरने का काम करती है। 21वीं सदी की आत्मकथाओं को देखने पर हमें

ऐसे-ऐसे विभिन्न झांकियां मिलती है। भारत में प्रत्येक दलित को समाज में भेदभाव और छुआछूत की समस्या से गुजरकर ही अपने जीवन संघर्ष से गुजरना पड़ता है। यह समस्या अब तक के आत्मकथा लेखन का एक प्रमुख पहलू के रूप में सामने आया है। इसकी एक बानगी हम जूठन में देख सकते हैं "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते बिल्ली, गाय भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन चूहरे का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपभोग खत्म। इस्तेमाल करो दूर फेंको।"[2]

यहाँ देख सकते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस पीड़ा को किस रूप में व्यक्त किया है, जब दलित वर्ग के लोगों को महज इस्तेमाल की वस्तु के रूप में देखा जाता है। अस्पृश्यता की समस्या और ऊपर से बदहाली दलितों में इस समाज के प्रति आक्रोश पैदा करने वाली है। मोहनदास नेमिशराय अपनी रचना में लिखते हैं-"हमारी जात के हिस्से में थी तो कंगाली की ऐसी चादर जिसमें से एक के बाद एक संकट झांक रहे थे। संकटों के साथ साथ हम अस्पृश्यता के भी शिकार थे। उन संकटों से बाहर आने का रास्ता भी न था। मुक्तिद्वार हमारे लिए बंद थे। हम केवल तड़प सकते थे, रो सकते थे , सिसक सकते थे। हमारे बाहर भीतर अजीबोगरीब हाहाकार था, पर उन्हें सुनने के लिए वहाँ फुर्सत किसे थी।"[3]

तुलसीराम ने मुर्दहिया और मणिकर्णिका दोनों ही आत्मकथाओं में दलित समाज में फैले अंधविश्वास और अशिक्षा को दर्शाया है, और बताया है कि ये अंधविश्वास किस प्रकार उनके सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। मुर्दहिया में वे लिखते हैं- "भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि' की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार उनके दादा की मृत्यु के पीछे भूत के होने का अंधविश्वास फैल गया था और उसके बाद उनके घर में भूत की पूजा होने लगी। शुभ या अशुभ कार्यों में चमरिया माई की तथा डीह बाबा की पूजा तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा के साथ भूत की पूजा भी होती है। गाँव के दलित ही नहीं, बल्कि ब्राह्मण भी अपने किसी मरे हुए पूर्वज के भूत की पूजा ब्रह्म बाबा के रूप में करते है। दलित बस्ती में अपने देवताओं को सूअर तथा बकरे की बलि दी जाती थी। तथा 'हलवा-सोहारी' (पूड़ी) धार और पुजौरा भी चढ़ाया जाता था।"[4] लेखक ने एक समाजशास्त्री की तरह लोकजीवन में व्याप्त अंधविश्वासों के माध्यम से उनके जीवन की दुर्दशा के कारकों के रूप में इन्हें चित्रित किया है। वे जानते हैं कि अंधविश्वास और अशिक्षा उनके पिछड़ेपन का एक महत्वपूर्ण कारण है।

निष्कर्ष : मराठी भाषा से शुरू हुए इन आत्मकथाओं के माध्यम से हम देख सकते हैं कि दलित आत्मकथाओं ने दलित समाज में विषमतामूलक उन सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जिसे हम खुल के बताने में झिझकते रहे हैं। अस्पृश्यता, जातिप्रथा, अशिक्षा, अंधविश्वास, आंतरिक सोपानीकरण और गरीबी उन प्रमुख कारकों में शामिल रहे हैं, जो दलित वर्ग के पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार हैं। इन रचनाओं ने उन दलित, वंचित और शोषित तबके को आवाज देने का कार्य किया है, जो अभी तक अनसुने रह गए थे। वास्तव में इन आत्मकथाओं ने प्रामाणिकता के साथ हिन्दी साहित्य के फलक का विस्तार कर इसे और मानवीय बनाने का कार्य किया है।

संदर्भ-सूची :

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र; ओमप्रकाश वाल्मीकि; पृष्ठ: 29
2. जूठन; ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ 12
3. अपने अपने पिंजरे-भाग 2; मोहनदास नैमिशराय; पृष्ठ 25
4. मुर्दहिया; डॉ. तुलसी राम, पृष्ठ 13